इकाई 38 भारत में नियोजन और औद्योगिकीकरण

इकाई की रूपरेखा

38.0 उद्देश्य
38.1 प्रस्तावना
38.2 स्वतंत्रता के समय औद्योगिक संरचना
38.2.1 औपनिवेशिक शासन के तीन चरण
38.2.2 सीमान्त वृद्धि
38.2.3 दुर्बलताएं और बाधाएँ
38.3 नियोजन की भूमिका से संबंधित प्रारंभिक विचार
38.4 औद्योगिक विकास में घरेलू बाज़ार की भूमिका
38.4.1 घरेलू बाज़ार की सीमाएँ
38.4.2 बम्बई योजना
38.5 स्वातंत्र्योत्तर प्रारंभिक प्रयास
38.5.1 औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1948
38.5.2 औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1956
38.5.3 प्रारंभिक प्रयासों का मूल्यांकन
38.6 औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन
38.7 नियोजन और क्रियान्वयन के उद्देश्य
38.7.1 नियंत्रण और विनियमन की भूमिका
38.7.2 दूसरी योजना का प्रारूप
38.8 औद्योगिक संरचना, वृद्धि और नीति में परिवर्तन
38.8.1 वृद्धि दर में गिरावट
38.8.2 गिरावट के कारण
38.8.3 नीतिगत बाधाएँ
38.8.4 संरचनागत बाधाएँ
38.9 उद्योग का स्वामित्व और नियंत्रण
38.9.1 प्रारंभिक एकाधिकार
38.9.2 एकाधिकार पर नियंत्रण के प्रयास
38.9.3 विदेशी पूँजी पर प्रतिबन्ध के प्रयास
38.9.4 लघु उद्योगों का विकास
38.10 उद्योग और नियोजन : एक मूल्यांकन
38.11 सारांश
38.12 शब्दावली
38.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

38.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भारत में आर्थिक और औद्योगिक विकास की पृष्ठभूमि के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- भारत में नियोजन के कुछ प्रारंभिक विचारों के बारे में जान पायेंगे,
- उन आधारभूत अवधारणाओं के बारे में जान सकेंगे जिनमें कि नियोजन की समझ निहित थी,
- नियोजन के क्षेत्र में स्वतंत्रता के पश्चात किये गये प्रारंभिक प्रयासों को समझ सकेंगे,
- योजना प्रारूपों के विकास के बारे में जान पायेंगे,
- भारत में आर्थिक नियोजन की बाधाओं और इन बाधाओं के विषय में विभिन्न विचारों को समझ सकेंगे।

38.1 प्रस्तावना

प्रारंभिक इकाइयों में आपने पढ़ा था कि ब्रिटिश शासन के दौरान भारत की अर्थव्यवस्था को किस तरह अल्पविकास की अवस्था में रहना पड़ा था। इस दौर में जो कुछ भी विकास हुआ था वह ब्रिटिश शासन की बाधाओं के बावजूद हुआ था। औपनिवेशिक शासन की जो भी बाधाएँ थीं वे 1947 में भारतीय स्वतंत्रता के साथ ही समाप्त हो गयीं। अब सामने सवाल यह था कि एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था की समस्याओं से कैसे निपटा जाए। इस मामले में प्रगतिशील राष्ट्रवादियों और भारतीय उद्योगपतियों के बीच विचारों की ज़बर्दस्त समानता उभर कर आयी। दोनों ही इस बात पर सहमत थे कि योजनाबद्ध आर्थिक विकास का तरीका उपनिवेशकालीन भारतीय अर्थव्यवस्था की क्षति को पूरा करेगा और विकास का नया रास्ता भी खोलेगा। इस इकाई में हम ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए विकास के इस नये रास्ते का मूल्यांकन करने का प्रयास करेंगे।

38.2 स्वतंत्रता के समय औद्योगिक संरचना

पूर्व इकाइयों में हमने भारतीय अर्थव्यवस्था पर औपनिवेशिक शासन के प्रभाव के बारे में पढ़ा था। ध्यान देने योग्य महत्वपूर्ण बात यह है कि यह प्रभाव समय और स्थान दोनों ही दृष्टियों से असमान था। मतलब यह कि ब्रिटिश शासन के कुछ कालों में उपनिवेशवाद का हानिकारक या लाभदायक प्रभाव, आर्थिक दृष्टि से अन्य कालों की अपेक्षा भिन्न था। इसी तरह, भारत के कुछ भागों में औपनिवेशिक शासन का प्रतिकूल प्रभाव दूसरे भागों की तुलना में अधिक था। उदाहरण के लिए प्रभाव की कालगत भिन्नता इस बात से ज़ाहिर होती है कि मुख्य रूप से 19वीं शताब्दी में भारतीय वस्त्र उद्योग को, विशेषकर हथकरघा उद्योग को, सस्ते अंग्रेज़ी कपड़े के आयात ने भारी क्षति पहुँचाई। लेकिन 18वीं शताब्दी के प्रारंभ में जब यूरोपीय व्यापारी वस्तुतः भारतीय कपड़े का निर्यात कर रहे थे, तब स्थिति पूरी तरह भिन्न थी। उसी तरह, स्थान संबंधी प्रभाव भिन्नता का उदाहरण इस तथ्य में मिलता है कि अंग्रेज सरकार की नीतियों से पश्चिमी भारत की तुलना में पूर्वी भारत की अर्थव्यवस्था को अधिक क्षति पहुँची। यही वह कारण है कि क्यों गुजरात और महाराष्ट्र, बिहार-असम-उड़ीसा और यहाँ तक कि बंगाल की तुलना में आज भी अधिक विकसित हैं। दरअसल, औपनिवेशिक शासन के दौरान पश्चिमी भारत में कुछ औद्योगीकरण हो गया था।

38.2.1 औपनिवेशिक शासन के तीन चरण

औपनिवेशिक शासन के तीन विभिन्न चरणों की पहचान करना संभव है :

i) **प्रथम चरण** : यह वह चरण है जिसमें ईस्ट इंडिया कंपनी एक व्यापारिक कंपनी के रूप में कार्य करती थी, जो भारतीय माल के साथ ही साथ तैयार माल को भी यूरोपीय बाज़ारों में ले जाती थी। यह व्यापार मूल उत्पादक से अधिक व्यापारी को समृद्ध बनाता था। यह चरण 17वीं शताब्दी के प्रारंभ से लेकर 19वीं शताब्दी के प्रारंभ तक रहा।

ii) **द्वितीय चरण** : इस चरण में 19वीं शताब्दी का अधिकांश भाग आता है। इस दौर में भारत में निर्मित वस्तुओं का स्थान सस्ती अंग्रेज़ी वस्तुओं ने ले लिया। इस कारगुज़ारी के परिणामस्वरूप बहुत से भारतीय हस्तशिल्प उत्पादक और कारीगर बर्बाद हो गये। इस काल में औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया में गिरावट के बारे में इतिहासकारों का ध्यान खींचा है। उनके अनुसार उद्योगों में लगे लोगों की संख्या का अनुपात कम हो गया था, जबकि कृषि में इस अनुपात में वृद्धि हो गयी थी। यह वह दौर भी था जिसमें विश्व भर में ब्रिटिश पूँजी के लिए भारत सस्ते कच्चे माल और सस्ती मज़दूरी का स्रोत हो गया था।

iii) **तृतीय चरण** : बीसवीं शताब्दी के आरंभ में साम्राज्यवादी आर्थिक नीति में परिवर्तन आए। ब्रिटिश शासन की नीतियों में ये परिवर्तन, भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन जैसी घटनाओं के घटित होने, सोवियत क्रान्ति तथा अमरीका और जर्मनी के औद्योगिक शक्तियों के रूप में उभरते जैसी घटनाओं के बाह्य दबावों के कारण आए। इन घटनाओं ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद को कमज़ोर बना दिया था। इस चरण में—जो लगभग इस शताब्दी के प्रारंभ से शुरू हुआ और स्वतंत्रता के समय तक चला—जो राजनीतिक रियायतें अंग्रेज़ सरकार ने भारतीय जनता को दी थीं, उनका उल्लेख पूर्व इकाइयों में किया जा चुका है। आर्थिक रियायतों, में इस्पात, चीनी, वस्त्र, कागज़ और सीमेंट जैसे अनेक भारतीय उद्योगों को शुल्क संरक्षण (Tariff Protection) दिया जाना सबसे महत्वपूर्ण था।

घरेलू बाज़ार का पोषण करने वाले उद्योगों का विकास भारत के औद्योगिकीकरण में एक नये चरण का प्रतीक बना। पहले विश्व युद्ध तक विनिर्माण (Manufacturing) गतिविधि जूट, तम्बाकू, चाय, कॉफ़ी, रबर, अभ्रक और मैगनीज़ जैसे उत्पादों तक सीमित रही। ये सब आवश्यक रूप से निर्यात प्रधान उत्पाद थे। 1920 और 1930 के दशकों में संरक्षण अनुदान से वस्त्र, चीनी, कागज़, सीमेंट और इन्जीनियरिंग सामान आदि, जैसे आयात का विकल्प बनने वाले उद्योगों को बढ़ने में मदद मिली।

38.2.2 सीमान्त वृद्धि

इन प्रत्यक्ष परिवर्तनों के बावजूद ब्रिटिश शासन के दौरान औद्योगिकीकरण का राष्ट्रीय आर्थिक वृद्धि पर कुल प्रभाव केवल सीमान्त प्रभाव ही था। स्वतंत्रता से पहले की शताब्दी में आर्थिक विकास की प्रकृति का मूल्यांकन करते हुए प्रसिद्ध अर्थशास्त्री ए. वैद्यनाथन ने कहा है :

> "कुल मिलाकर स्वतंत्रता पूर्व का युग भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए तकरीबन ठहराव या गतिरोध का युग था। बीसवीं शताब्दी के पूवार्द्ध में कुल वास्तविक उत्पादन में वृद्धि दो प्रतिशत वार्षिक से भी कम आंकी गयी है, और प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि आधा प्रतिशत या इससे भी कम थी। उत्पादन के ढाँचे में या उत्पादकता के स्तरों में शायद ही कोई परिवर्तन हुआ था। आधुनिक विनिर्माण (Manufacturing) की वृद्धि को संभवतः पारंपरिक हस्तशिल्प के विस्थापन ने निष्प्रभावी कर दिया था, और यह वृद्धि हर हाल में इतनी कम थी कि उत्पादन की कुल स्थिति पर इससे फ़र्क नहीं पड़ना था।"

स्वतंत्रता पूर्व भारत में औद्योगिक विकास की प्रकृति का एक और पहलू भी था, वह यह कि अधिकांश आधुनिक उद्योग विदेशियों द्वारा नियंत्रित थे, और भारतीय व्यापारी इस क्षेत्र में युद्ध के दौरान ही ठीक तरह से प्रवेश कर सके। तात्पर्य यह कि द्वितीय चरण की अधिकांश निर्यात-प्रधान विनिर्माण गतिविधि मुख्य रूप से यूरोप के अथवा ब्रिटिश व्यापारिक घरानों के नियंत्रण में थी। केवल तीसरे चरण में ही भारतीय उद्यमियों के व्यापार घराने उभर कर आ सके। विनिर्माण उद्योग के स्वामित्व की जो स्थिति हमारे सामने आती है, वह तालिका-1 से स्पष्ट होती है :

तालिका-1
विनिर्माण उद्योग में विदेशी पूँजी

विदेशियों के शेयर, कुल शेयरों के प्रतिशत के रूप में	स्थापित उद्यम			
	1949 से पहले		1950-60 के मध्य	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1-19	259	31.9	56	22.9
20-49	54	6.6	63	25.8
50-79	62	7.6	65	26.6
80-99	16	2.0	7	2.9
100%	420	51.9	53	21.8
योग	811	100.0	281	100.0

स्रोत : इन्डस्ट्रिअलाइज़ेशन ऑफ़ इंडिया, जी.के. शिरोकर, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1980, पृ. 95, तालिका-2

उपरोक्त तालिका यह दर्शाती है कि स्वतंत्रता के समय किस तरह विनिर्माण उद्योग में विदेशी पूँजी का प्रभुत्व बना हुआ था, और स्वतंत्रता के बाद भी औद्योगिक क्षेत्र में किस तरह इस पूँजी की भूमिका महत्वपूर्ण बनी रही।

यह संक्षिप्त विवरण यह स्पष्ट करता है कि,

- अंग्रेज़ी व्यापार का भारत में प्रमुख स्थान बना रहा
- भारत में अंग्रेज़ सरकार द्वारा लागू की गयी नीतियों ने भारतीय उद्यमों को प्रोत्साहित नहीं किया।

यूरोप के अधिकांश औद्योगिक अर्थतंत्रों के मामलों में संबंधित देशों की राष्ट्रीय सरकारों ने अपने व्यापारी वर्ग की वृद्धि के समर्थन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। परंतु भारत में ऐसा नहीं हुआ, और युद्ध काल से पहले तो बिल्कुल भी नहीं हुआ।

औपनिवेशिक सरकार केवल अंग्रेज़ी व्यापार समूहों को संरक्षण देने में रुचि रखती थी। उसका देश के औद्योगिक विकास में प्रोत्साहन देने का कोई इरादा नहीं था।

38.2.3 दुर्बलताएं और बाधाएँ

रोचक बात यह है कि सरकार के इस प्रकार के विरोधी रवैये के बावजूद भारतीय उद्यमों की थोड़ी बहुत वृद्धि हुई। जब अंग्रेज़ सरकार ने 1930 और 1940 के दशकों में भारतीय उद्यमों को समर्थन देने का रुख़ अपनाया तो इन उद्यमों ने इसे उत्साह के साथ स्वीकार किया। लेकिन युद्ध काल के दौरान उद्योग क्षेत्र में किया गया अधिकांश निवेश कृषि-आधारित और उपभोक्ता वस्तुओं वाले उद्योगों में ही किया गया। ऐसा कुछ उद्योगों को संरक्षण देने की नीति के तहत भी हुआ। इसने पूंजीगत सामग्री वाले उद्योगों के विकास को प्रोत्साहित नहीं किया। पूँजीगत सामग्री वाले उद्योगों को हतोत्साहित ही किया गया। क्योंकि इंग्लैंड भारत को पूंजीगत सामग्री का निर्यात करने वाला एक प्रमुख निर्यातक था और वह नहीं चाहता था कि उसके भारतीय प्रतिद्वन्द्वी उभर कर आयें।

पूंजीगत सामग्री क्षेत्र की ग़ैर मौजूदगी के अलावा एक और दुर्बलता थी जो औद्योगिक उत्पादन के बेहतर विकास में बाधा बनी रही। यह बाधा तकनीकी कौशल की कमी, अपर्याप्त आधारभूत संरचनागत विकास (विशेष रूप से बिजली, परिवहन और संचार के क्षेत्र में) के कारण पैदा हुई थी।

ये प्रमुख बाधाएँ औद्योगिक विकास के क्षेत्र में स्वतंत्रता से पहले थीं। स्वतंत्रता के पश्चात सरकार ने नियोजन और राज्य के हस्तक्षेप के माध्यम से इन बाधाओं को दूर करने का प्रयास किया। कच्चे माल या वित्त के अभाव के कारण ब्रिटिश भारत में औद्योगिक विकास में बाधा नहीं आयी बल्कि इसका कारण, भारतीय दृष्टिकोण से, कच्चे माल और वित्त का दुरुपयोग था। स्वतंत्रता के बाद योजनाबद्ध औद्योगिकीकरण के माध्यम से राज्य ने इसे दूर करने का प्रयास किया।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में औद्योगिकीकरण के नियोजन की यही पृष्ठभूमि थी। इस पृष्ठभूमि की प्रमुख विशेषताएं ये थीं :

1) वैज्ञानिक और तकनीकी विकास का निम्न स्तर,
2) वस्त्र और चीनी जैसी उपभोक्ता वस्तु उद्योगों की प्रमुख भूमिका और पूंजीगत सामग्री वाले उद्योगों की अपेक्षाकृत अनुपस्थिति,
3) विनिर्माण गतिविधि में विदेशी पूंजी का प्रमुख स्थान,
4) परिवहन, विद्युत, औद्योगिक वित्त और तकनीकी जनशक्ति प्रशिक्षण जैसी आधारभूत संरचनागत सुविधाओं का अपर्याप्त विकास,
5) और, सबसे अधिक महत्वपूर्ण था, उद्योग के लिए उपयुक्त घरेलू बाज़ार का न होना।

इन सारी विशेषताओं को उन बाधाओं के रूप में मान्यता दी गयी थी जिन्हें कि भविष्य में दूर किया जाना था। राष्ट्रवादी नेताओं और व्यापारियों ने समान रूप से यह महसूस किया कि भारत में तीव्र औद्योगिकीकरण के लिए आधारभूत ज़रूरतें ये थीं :

1) आधारभूत संरचनागत सुविधाओं का प्रावधान,
2) निवेश योग्य संसाधनों को उद्यमियों तक पहुंचाने के तरीके ईजाद करना,
3) विनिर्मित सामग्री के लिए घरेलू मांग पैदा करना।

लेकिन यह तब तक संभव नहीं था जब तक स्वयं सरकार इनमें से प्रत्येक आवश्यकता पर कुछ न कुछ कार्रवाई करे। इसी संदर्भ में 'नियोजन' को औद्योगिकीकरण के आधार के रूप में देखा गया।

38.3 नियोजन की भूमिका से संबंधित प्रारंभिक विचार

जवाहरलाल नेहरू को 1938 में ही राष्ट्रीय योजना समिति का अध्यक्ष बनाया गया था। इस समिति का गठन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा किया गया था। कांग्रेस पार्टी का 1937 में हुआ फ़ैज़पुर अधिवेशन इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसमें एक प्रखर वामपक्षी गुट उभर कर आ गया था। यह गुट सोवियत संघ में योजनाबद्ध औद्योगिकीकरण के अनुभव से काफ़ी उत्प्रेरित था। इस गुट का मानना था कि यदि भारत स्वतंत्र हुआ तो उसे नियमबद्ध तथा राज्याश्रित औद्योगिकीकरण की ऐसी ही किसी नीति को अपनाना पड़ेगा। उनकी इस मान्यता से सभी लोग सहमत थे। यह तथ्य आमूल परिवर्तनवादी कांग्रेसियों और रूढ़िवादी व्यापारियों, दोनों के ही लेखन से स्पष्ट होता है। उदाहरण के लिए राष्ट्रीय योजना समिति ने विचार प्रकट किया था :

> "गरीबी और बेरोज़गारी, राष्ट्रीय सुरक्षा और आमतौर पर आर्थिक विकास की समस्याओं को बिना औद्योगिकीकरण के नहीं सुलझाया जा सकता। औद्योगिकीकरण की दिशा में एक कदम के रूप में राष्ट्रीय नियोजन की व्यापक रूपरेखा तैयार की जानी चाहिए। जो योजना बने उसमें भारी प्रमुख उद्योगों, मध्यम उद्योगों और कुटीर उद्योगों के समुचित विकास का प्रावधान होना चाहिए।"

चार वर्ष बाद लगभग इसी प्रकार के विचार उस दस्तावेज़ में प्रकट किए गये थे जिसे आमतौर पर 'बंबई योजना' के नाम से जाना जाता था। यह दस्तावेज़ 1944 में जे. आर. डी. टाटा, जी.डी. बिड़ला और लाला श्रीराम सहित अनेक प्रमुख व्यापारियों ने तैयार किया था। बंबई योजना में कहा गया था :

"हमने जिस प्रकार के आर्थिक विकास का प्रस्ताव किया है वह तब तक संभव नहीं होगा जब तक इस विकास को एक केन्द्रीय निदेशक सत्ता (Central Directing Authority) के आधार पर नहीं किया जाये। इसके अलावा इस विकास में शामिल वित्तीय ज़िम्मेदारियों के असमान वितरण को रोकने के लिए राज्य के नियंत्रणकारी उपायों की भी जरूरत होगी।"

ऊपर दिये गये उदाहरण अनेक भिन्न स्रोतों से लिये गये हैं :

- पहला, जो "राष्ट्रीय योजना समिति" (National Planning Committee) से लिया गया है, उन लोगों के विचार प्रकट करता है जो समाजवादी दृष्टिकोण रखते थे और मानते थे कि भारत तभी औद्योगीकृत हो सकता है जब वह राज-नियंत्रित नियोजन को अपनाये।
- दूसरा, जो बंबई योजना से लिया गया है, कुछ सार्वजनिक प्रमुख उन भारतीय व्यापारियों के दृष्टिकोण को प्रकट करता है जो आमतौर पर सरकारी हस्तक्षेप और नियंत्रण के विरोधी थे।

यह समान दृष्टिकोण इस तथ्य को उजागर करता है कि भारत में लगभग प्रत्येक व्यक्ति ने औद्योगिकीकरण से संबंधित जो बुनियादी बाधाएँ थीं उन्हें मान्यता दी और उन्हें निजी क्षेत्र की असमर्थता समझा क्योंकि उसे औपनिवेशिक शोषण की दो शताब्दियों ने बहुत कमज़ोर कर दिया था जिससे औद्योगिकीकरण के लिए संरचना प्रदान करने के विशाल कार्य को हाथ में लेने की क्षमता उसमें नहीं थी। इसके आलावा प्रमुख व्यापारी यह अच्छी तरह

सीमित है। जब तक सरकार सार्वजनिक व्यय तथा निवेश कार्यक्रमों के माध्यम से और कृषि के रूपान्तरण के माध्यम से, धन व्यय नहीं करेगी तब तक आधुनिक उद्योग के लिए वृद्धि संभव नहीं होगी।

38.4 औद्योगिक विकास में घरेलू बाज़ार की भूमिका

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, स्वतंत्रता के समय भारत में उद्योगों के तीव्र विकास में सबसे प्रमुख बाधा यह थी कि यहां घरेलू बाज़ार का पर्याप्त विकास नहीं हुआ था। इस तथ्य के परिप्रेक्ष्य में दो प्रश्न पैदा होते हैं :

i) घरेलू बाज़ार पर्याप्त रूप से विकसित क्यों नहीं था? और,
ii) घरेलू बाज़ार तथा औद्योगिक विकास के बीच ठीक-ठीक सम्बन्ध क्या था?

दूसरे प्रश्न का उत्तर आसान है। जब तक बाज़ार में किसी वस्तु की निश्चित मांग न हो तब तक कोई भी उद्यमी उसके उत्पादन में निवेश करने के लिए प्रेरित नहीं होगा। ऐसा हुआ है कि उत्पादनकर्ताओं ने किसी वस्तु का निर्माण केवल बाहरी बाज़ारों के लिए अथवा निर्यात के लिए ही किया है। लेकिन इस प्रकार का निर्यात-आधारित उत्पादन भारत जैसे विशाल और पिछड़े अर्थतंत्र वाले देश में तीव्र औद्योगिकीकरण का आधार नहीं हो सकता था। विशेष रूप से उस स्थिति में तो बिल्कुल भी नहीं, जहां प्राधिकांश विदेशी व्यापार योरोप के लोगों के नियंत्रण में हो। इस तरह औद्योगिकीकरण की श्रेष्ठतम शर्त यही थी कि घरेलू बाज़ार का विस्तार किया जाये।

38.4.1 घरेलू बाज़ार की सीमाएं

लेकिन भारत में आम जनता की ग़रीबी ने विनिर्मित वस्तुओं के घरेलू बाज़ार को सीमित कर रखा था। ब्रिटिश शासन ने भारतीय ग्रामीण जनता को निर्धन बना दिया था और उसे जीवन यापन के निम्न स्तर पर बने रहने के लिए मज़बूर कर दिया था। जब लोग निम्न स्तर पर जीवन यापन करते थे तो वे अपना अधिकांश धन भोजन पर व्यय करते थे। अभोज्य पदार्थों की मांग केवल तभी बढ़ती है जब आमदनी बढ़ती है। इसलिए भारत में उद्योग के विकास की पहली आवश्यकता ग्रामीण और शहरी आमदनियों को बढ़ाने की थी ताकि अधिकांश लोग विनिर्मित सामग्री की खपत को बढ़ा सकें और इस प्रकार उद्योग के लिए घरेलू बाजार का विस्तार कर सकें।

38.4.2 बंबई योजना

इन स्थितियों को देखते हुए औद्योगिक उत्पादन की मांग बढ़ाने के एक तरीके के रूप में भारतीय राजनीतिक और व्यापारिक नेताओं और अर्थ-शास्त्रियों ने कृषि संबंधी उत्पादन और आमदनियों की संवृद्धि पर बल दिया। 'बंबई योजना' में इस तथ्य को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है। इस योजना में भूमि सुधार और कृषि क्षेत्र में सरकारी निवेश, विशेष रूप से सिंचाई के लिए, और उद्योग तथा सेवाओं जैसे अन्य क्षेत्रों में सार्वजनिक निवेश की बात प्रमुखता से कही गई ताकि घरेलू मांग पैदा की जा सके। इसी संदर्भ में राज्य के हस्तक्षेप और नियोजन को निरंतर औद्योगिकीकरण के लिए आवश्यक तत्व माना गया। कृषि में वृद्धि उद्योग के लिए कच्चा माल पैदा करके और मज़दूरों के लिए जीवन यापन की ज़रूरी सामग्री पैदा करके भी औद्योगिकीकरण में सहयोग देती है। भारत जैसे कृषि प्रधान समाज में कृषि संबंधी समृद्धि औद्योगिकीकरण की कुंजी है। यहां अधिकांश आबादी कृषि पर निर्भर करती है और यह उद्योगों के लिए घरेलू बाज़ार तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

बोध प्रश्न 1

1 सही कथन पर (✓) निशान लगाइए:

i) राष्ट्रवादी नेताओं और भारतीय उद्योगपतियों ने पाँचवें दशक में योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था के विरुद्ध मुक्त बाज़ार अर्थव्यवस्था की माँग की। ( )

ii) राष्ट्रवादी नेता एक योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था चाहते थे, लेकिन भारतीय उद्योगपति, पाँचवें दशक में, मुक्त बाज़ार अर्थव्यवस्था चाहते थे। ( )

iii) राष्ट्रवादी नेता और भारतीय उद्योगपति दोनों ही पाँचवें दशक से भारत के लिए एक योजनाबद्ध अर्थतंत्र चाहते थे। ( )

iv) राष्ट्रवादी नेता और भारतीय उद्योगपति दोनों को ही पाँचवें दशक में यह नहीं मालूम था कि भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के लिए कौन सा रास्ता अपनाया जाए। ( )

2 घरेलू बाजार को :

i) औद्योगिक वृद्धि के लिए विस्तृत होना चाहिए। ( )

ii) औद्योगिक वृद्धि के लिए सिकुड़ा हुआ होना चाहिए ( )

iii) औद्योगिक वृद्धि के लिए जैसा का तैसा बना रहना चाहिए। ( )

iv) दोनों (ii) और (iii). ( )

3 दो कारण बताइये जिनकी वजह से औपनिवेशिक शासन के दौरान भारतीय उद्योग क्षेत्र विस्तार नहीं पा सका?

....

....

....

....

....

38.5 स्वातंत्र्योत्तर प्रारंभिक प्रयास

यही वह औद्योगिक परिदृश्य था (पूर्व वर्णित) जिसकी पृष्ठभूमि में 1948 में स्वतंत्र भारत की संसद द्वारा **पहला औद्योगिक नीति प्रस्ताव** (Industrial Policy Resolution) (आई. पी. आर.) पारित किया गया। कई अर्थों में आई.पी.आर. 1948, भारत में साम्राज्यवादी सरकार द्वारा अप्रैल 1945 में जारी किये गये एक **औद्योगिक नीति वक्तव्य** (Industrial Policy Statement) का ही संशोधित रूप था। इस वक्तव्य को भारत में युद्धोत्तर औद्योगिक निर्माण के आधार रूप में देखा गया था। इसमें बंबई योजना के कुछ विचार भी शामिल थे।

38.5.1 औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1948

भारत सरकार ऐक्ट 1935 के अंतर्गत औद्योगिक विकास एक प्रान्तीय विषय था। लेकिन 1945 के 'नीति वक्तव्य' के अनुसार भारत सरकार इसके विचार क्षेत्र के अंतर्गत लगभग बीस उद्योगों को ले आयी। इनमें ये उद्योग शामिल थे :

- लोहा और इस्पात,
- मोटर वाहन और परिवहन वाहन,
- हवाई जहाज,
- विद्युत मशीनरी.
- भारी मशीनरी,
- मशीनों के औज़ार,
- भारी रसायन,
- उर्वरक,
- दवाएं और औषध,
- सीमेंट,
- चीनी

- रबर उत्पाद,
- कोयला और,
- विद्युत इत्यादि।

आई. पी. आर. 1948, से ये उद्योग तथा कुछ अन्य उद्योग,केन्द्र के विचार क्षेत्र में आ गये। आई. पी. आर. 1948 में औद्योगिक नीति के कुछ निश्चित लक्ष्य निर्धारित किये गये जिनमें आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रीकरण (Concentration) को रोकना शामिल था। इस प्रस्ताव में उद्योगों के विकास में सरकार की एक प्रगतिशील सक्रिय भूमिका तय की गयी। सरकार के लिए जो दिशा निर्देश तय किये गये वे थे :

"आगे कुछ समय के लिए राज्य, राष्ट्रीय सम्पत्ति की वृद्धि में अपनी वर्तमान गतिविधि को, जहां भी यह पहले से चल रही है, और विस्तार देकर, और वर्तमान इकाइयों को अधिग्रहण करके चलाने के बजाय दूसरे क्षेत्रों में उत्पादन की नयी इकाइयों पर ध्यान देकर, अधिक शीघ्रता से अपना योगदान कर सकता है।"

कुछ उद्योग पूरी तरह सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित थे (परमाणु ऊर्जा और शस्त्र आदि) और कुछ को उन उद्योगों में शामिल किया गया था जिनमें निजी क्षेत्र को, अगर यह राष्ट्रीय हित में हो तो, निवेश की अनुमति प्रदान की जा सकती थी। लेकिन उनके भावी विकास की ज़िम्मेदारी सरकार की ही थी (इस्पात, कोयला, उड्डयन आदि)। बाकी सारे उद्योग निजी क्षेत्र के लिए खुले थे। प्रस्ताव में यह भी संकेत किया गया था कि कुछ मामलों में औद्योगिक अवस्थिति यानी उद्योगों के स्थान से संबंधित कुछ निश्चित निर्देशों का पालन किया जाएगा। इस प्रस्ताव में अधिक समतापूर्ण औद्योगिक वृद्धि सुनिश्चित करने के लिए कुटीर और लघु उद्योगों के महत्व को भी स्वीकार किया गया था।

38.5.2 औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1956

औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1948 के बाद औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1956 लाया गया। इस प्रस्ताव का प्रारूप, संसद द्वारा समाज के समाजवादी ढांचे की स्थापना को सरकार की सामाजिक और आर्थिक नीतियों के उद्देश्य के रूप में स्वीकार किये जाने के पश्चात् तैयार किया गया। तृतीय पंचवर्षीय योजना भी इसके साथ ही शुरू की गयी जिसमें वृद्धि के लिए अपनायी जाने वाली नीति में उद्योग, विशेष रूप से भारी उद्योग की वृद्धि पर विशेष बल दिया गया था।

भारत में योजनाबद्ध औद्योगिकीकरण की वास्तविक प्रक्रिया जिसे बंबई योजना 1944, औद्योगिक नीति वक्तव्य 1945, औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1948, और 1956 जैसे अनेक नीति वक्तव्यों में प्रकट किया गया था, उद्योग ऐक्ट 1951 या द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956) के लागू हो जाने के बाद शुरू हुई थी। उद्योग एक्ट 1951, में उद्योगों का विकास और नियमन शामिल था। उद्योग (विकास और विनियमन) ऐक्ट 1951, वह औज़ार था जिसके माध्यम से सरकार ने औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1948 द्वारा निर्देशित अपने लक्ष्यों को पूरा करने का प्रयास किया। सरकार को जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण अधिकार प्राप्त किया था, वह था–मध्यम और बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों की स्थापना के लिए लाइसेंस जारी करने का अधिकार। इस ऐक्ट में सरकार को उत्पादन की मात्रा, आयात और विक्रय कोटा, मूल्य और मज़दूरी और वेतन तय करने का अधिकार भी प्रदान किया गया था। द्वितीय पंचवर्षीय योजना ने, औद्योगिकीकरण की नीति का जिसे भारत के लिए पहले ही आवश्यक मान कर स्वीकार कर लिया गया था, औचित्य भली प्रकार सिद्ध कर दिया।

38.5.3 प्रारंभिक प्रयासों का मूल्यांकन

कुल मिला कर स्वातंत्र्योत्तर काल के प्रारंभ में औद्योगिक नीति का उद्देश्य सार्वजनिक क्षेत्र की जिसे प्रायः राज्य का पूंजीवाला क्षेत्र कहा जाता है, केन्द्रीय भूमिका सुनिश्चित करना था। सार्वजनिक क्षेत्र को राज्य का पूंजीवाला क्षेत्र इसलिए कहा जाता है क्योंकि यहां उद्यमों में राज्य निवेशकर्ता हैं। देश के समग्र औद्योगिक विकास में इस क्षेत्र ने केन्द्रीय स्थान प्राप्त कर लिया है। इसके अलावा इस अवधि में यह सुनिश्चित करने के प्रयास भी किये गये कि निजी भारतीय उद्यमों को समुचित संरक्षण मिले। इसके साथ ही विदेशी पूंजी को कड़ी

निगरानी में रखा गया। वास्तव में विदेशी पूंजी की भूमिका पर नीति वक्तव्य बहुत ही कड़ा था। औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1948 और 1956 बहुत से क्षेत्रों में किसी भी प्रकार की विदेशी भागीदारी नहीं चाहते थे। लेकिन व्यवहार में इस पर अमल नहीं हो सका और शीघ्र ही राष्ट्रीय हित में विदेशी पूंजी के प्रवेश की अनुमति दे दी गयी। इसके बावजूद औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1948 और 1956 औद्योगिक नीति के निर्देशक सिद्धान्तों के आधार बने।

वह सार्वजनिक क्षेत्र जो अर्थव्यवस्था के नियामक शिखर पर और उस निजी क्षेत्र के साथ मिलकर कार्यरत था जिसे व्यवस्थित या "विनियमित" किया जाना था और बाहरी प्रतियोगिता के विरुद्ध जिसे आरक्षण भी दिया जाना था।

राज्य के समर्थन और नियमन के संरक्षक छाते के नीचे औद्योगिक क्षेत्र को आयात-स्थानापन्न औद्योगिकीकरण (Import Substitution Industrialisation) यानी ऐसा औद्योगिकीकरण जिससे आयात किया जाने वाला माल घरेलू स्तर पर तैयार किया जा सके, के माध्यम से आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया गया। इस प्रकार औद्योगिक नीति के दोहरे लक्ष्य थे :

i) मिश्रित अर्थ व्यवस्था की स्थापना (यहां मिश्रित से तात्पर्य सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के साथ-साथ बने रहने से है)।
ii) आत्मनिर्भर औद्योगिक अर्थतंत्र की वृद्धि करना (आत्म-निर्भर से यहां तात्पर्य है अर्थ व्यवस्था के आवश्यक और महत्वपूर्ण क्षेत्रों में विदेशी पूंजी, प्रोद्योगिकी या निवेश पर निर्भर न रहना)।

38.6 औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन

हम यह समझ चुके हैं कि घरेलू आबादी की बढ़ती हुई आमदनी के आधार पर घरेलू बाज़ार का वर्धन किस तरह आगे जाकर औद्योगिक विकास के लिए एक महत्वपूर्ण प्रोत्साहन बनता है। भारत जैसे कृषि प्रधान समाज में इस प्रकार का बाज़ार मुख्य रूप से ग्रामीण आय में वृद्धि और कृषि संबंधी बचतों के माध्यम से विकसित किया जा सकता है। विनिर्मित सामग्री की मांग का एक और स्रोत आयात का स्थानापन्न हो सकता है।

अगर एक देश को किसी वस्तु का आयात रोकना हो तो वह इसके घरेलू उत्पादन को प्रोत्साहित करेगा और इसी के अनुसार औद्योगिक गतिविधि को बढ़ावा देगा। पहले से स्थापित सुदृढ़ उद्योगों के मुकाबले में नये उद्योगों को हानि से बचाने के लिए सरकार उन्हें संरक्षण प्रदान कर सकती है, यह धारणा शिशु उद्योग सिद्धांत पर आधारित है जो यह सुझाव देता है कि उद्योगों को उनके शैशव यानी प्रारंभ में संरक्षण की ज़रूरत होती है ताकि वे अधिक विकसित अर्थतंत्रों में स्थापित अपने प्रतियोगियों का मुकाबला कर सकें। आयात-स्थानापन्न औद्योगिकीकरण प्राय: निर्यात प्रधान औद्योगिकीकरण से प्रकृति में भिन्न होता है। निर्यात-प्रधान औद्योगिकीकरण में औद्योगिक विकास की प्रेरणा घरेलू बाज़ार से नहीं मिलती बल्कि विदेशी बाज़ार या निर्यात बाज़ार से मिलती है।

भारत में अर्थशास्त्रियों का विश्वास था कि भारत जैसे विशाल अर्थतंत्र में जिसका घरेलू बाज़ार विशाल किन्तु अप्रयुक्त है, औद्योगिक विकास की प्रेरणा बाहरी बाज़ारों पर आधारित निर्यात-प्रधान औद्योगिकीकरण से न आकर, घरेलू बाज़ार के विस्तार पर आधारित आयात-स्थानापन्न औद्योगिक विकास से आनी चाहिए।

38.7 नियोजन और क्रियान्वयन के उद्देश्य

औद्योगिक नीति के उद्देश्यों में इन बातों को भी शामिल किया गया है : (इन्हें 1973, 1978 और 1980 में, अपनाये गये औद्योगिक नीति प्रस्तावों में पुनः घोषित किया गया है)।

- औद्योगिक उत्पादन और उत्पादकता को, विशेषकर प्रमुख उद्योग क्षेत्रों में बढ़ाना,
- संतुलित क्षेत्रीय विकास लाना,
- लघु उद्योगों को प्रोत्साहित करना,
- एकाधिकार नियंत्रण के माध्यम से आर्थिक शक्ति के संकेंद्रीकरण को रोकना,
- घरेलू उद्योगों में विदेशी निवेश को सीमित और विनियमित करना,
- रोज़गार पैदा करना और मूल्य स्थिरता को बनाए रखना और,
- आवश्यक निवेश सामग्री और वस्तुओं के आयात को प्रतिबंधित करना।

38.7.1 नियंत्रण और विनियमन की भूमिका

सरकार ने उद्योग (विकास और विनियमन) ऐक्ट 1951 का प्रयोग उन नीतियों के क्रियान्वयन के लिए किया जिन नीतियों को इन लक्ष्यों को पूरा करने के लिए निर्धारित किया गया था। उद्योग नीति का एक प्रमुख साधन लाइसेंस पद्धति को बनाया गया। सरकार ने उद्योग स्थापित करने के लिए लाइसेंस जारी करने का अधिकार दो कारणों से अपने पास सुरक्षित रखा :

1) सरकार चाहती थी कि उद्योगों की अवस्थिति और स्वामित्व बिखरा हुआ रहे यानी उद्योगों पर एक ही व्यक्ति या समूह का स्वामित्व न हो और ये उद्योग किसी एक ही भौगोलिक क्षेत्र में स्थापित न हों।
2) और, उपभोक्ताओं तथा श्रमिकों के हितों को संरक्षण प्राप्त हो।

इन लक्ष्यों को किस हद तक प्राप्त किया जा सका यह एक विवाद का विषय है। उदाहरण के लिए, औद्योगिक लाइसेंस नीति जांच समिति (1969) ने पाया कि सरकारी विनियमन के बावजूद एकाधिकारी घरानों ने, विशेषकर बिड़ला समूह ने, जारी किये गये अधिकांश लाइसेंस बटोर लिये थे। इसी प्रकार यह पाया गया कि पश्चिमी भारत जैसे औद्योगिक रूप से विकसित क्षेत्र लगातार विकसित हुए और उत्तरी और पूर्वी भारत के बड़े हिस्से औद्योगिक रूप से पिछड़े बने रहे।

यहां हमारे विचार के लिए एक प्रश्न पैदा होता है—सरकारी विनियमन ने वास्तव में किस सीमा तक औद्योगिक अवस्थिति और स्वामित्व के ढांचे को परिवर्तित किया?

बिना इस प्रकार के विनियमन के अगर उद्योगों को विकसित होने दिया गया होता तो क्या यह विकास वस्तुतः अब तक हो चुके विकास से भिन्न होता? सरकार के कुछ आलोचक कहते हैं कि सारी गड़बड़ी नियंत्रण लागू करने से हुई। ये लोग नियंत्रणों का विरोध करते हैं और उद्योगों को विनियमन मुक्त करने का तर्क देते हैं। अन्य का मत है कि गड़बड़ी वास्तव में नियंत्रणों के कारण नहीं है, बल्कि उनके क्रियान्वयन में है।

38.7.2 दूसरी योजना का प्रारूप

प्रथम पंचवर्षीय योजना में औद्योगिकीकरण का कोई परिप्रेक्ष्य स्पष्ट नहीं था। इस योजना का प्रारूप जल्दी में तैयार किया गया था और जो **आवश्यक** था उसकी तुलना में जो **संभव** था उसके वास्तविक मूल्यांकन के आधार पर इसे तैयार किया गया था।

लेकिन दूसरी योजना का परिप्रेक्ष्य बहुत सोच विचार कर तैयार किया गया था। प्रसिद्ध सांख्यिकीविद् प्रोफेसर पी. सी. महलानोबिस (P.C. Mahalanobis) के निर्देशन में एक दीर्घावधि प्रत्यक्ष योजना तैयार की गयी जिसमें भारी उद्योगों के विकास को प्राथमिकता दी गयी। भारत के पास धातु और खनिज जैसे कच्चे पदार्थों के प्रचुर संसाधन थे, इसलिए यह सुझाव दिया गया कि भारत को इस्पात, कोयला, भारी मशीनरी, तेल परिशोधन कारखाने,

सीमेंट आदि जैसे 'आधारभूत' उद्योगों पर अपने प्रयास संकेन्द्रित करने चाहिए ताकि तीव्र औद्योगिक विकास का आधार तैयार किया जा सके। औद्योगिकीकरण में अग्रणी भूमिका उपभोक्ता वस्तु विनिर्मित करने वाले उद्योगों के बजाय पूंजीगत और आधारिक माल तैयार करने वाले उद्योगों को दी जानी चाहिए। इस प्रकार की औद्योगिक वृद्धि द्वारा पैदा की गयी मांग कुछ समय बाद उपभोक्ता वस्तु उद्योगों को प्रोत्साहित करेगी और उस समय तक औद्योगिक क्षेत्र, समुचित मध्यवर्ती माल और मशीनरी पैदा करने की स्थिति में आ जायेगा।

चित्र 1 औद्योगिक विकास के लिये सार्वजनिक क्षेत्र में प्रयास, सिंदरी फर्टिलाइज़र फैक्ट्री

इस नीति के क्रियान्वयन के लिए आवश्यकता यह थी कि आधारिक और पूंजीगत माल या सामग्री वाले उद्योग क्षेत्र में बड़ी मात्रा में निवेश किया जाये। निजी क्षेत्र आवश्यक भारी निवेश करने में सक्षम नहीं था। इसमें निजी क्षेत्र की रुचि भी नहीं थी क्योंकि इस निवेश से कम लाभ प्राप्त होना था और वह भी एक लम्बे समय के बाद। भारी निवेश की यह ज़िम्मेदारी सार्वजनिक क्षेत्र यानी राज्य के पूंजीवाले क्षेत्र ने निभाई। इससे सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका का महत्व सामने आया। पश्चिम जर्मनी और सोवियत संघ जैसे देशों के सहयोग से भारत अपने इस्पात उद्योग और भारी अभियांत्रिकी, भारी रसायन और अन्य मूल उद्योगों को विकसित करने में सफल हुआ।

इस क्षेत्र में किये गये निवेश और इस निवेश से पैदा हुई आय और रोज़गार ने, जो व्यवहार में मूल लक्ष्यों से नीचे ही रहे, विकास की एक प्रभावशाली दर को बनाये रखा। औद्योगिक उत्पादन के विकास की दर में तेज़ी से वृद्धि हुई। फलस्वरूप प्रथम पंचवर्षीय योजना की 5.7 प्रतिशत विकास दर से बढ़ कर दूसरी योजना में यह दर 7.2 प्रतिशत हो गई और तीसरी योजना के दौरान यह 9 प्रतिशत तक पहुंच गयी। पूंजीगत माल वाले उद्योगों ने प्रगति का सबसे अधिक प्रभावशाली कीर्तिमान स्थापित किया। भारत के औद्योगिक विकास का यह आधार सातवें दशक के मध्य तक बना रहा।
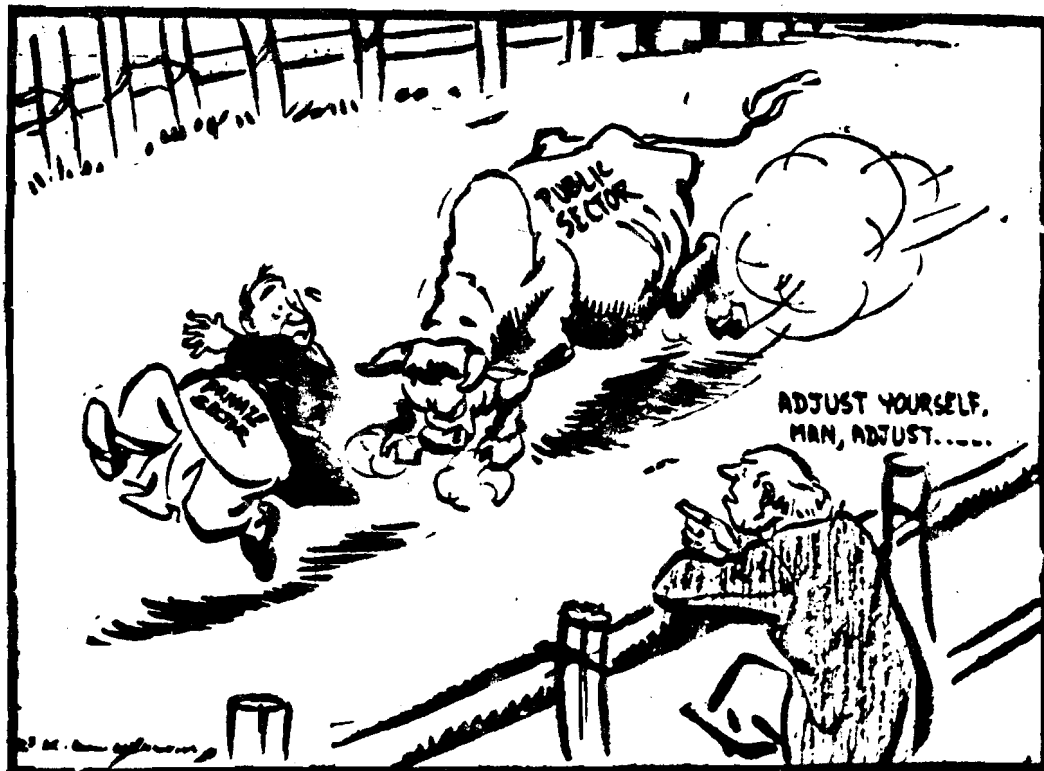
2 सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के बीच संबंध दर्शाता हुआ एक कार्टून

बोध प्रश्न 2

1 सही कथन पर (✓) लगाइए।
आयात-स्थानापन्न औद्योगिकीकरण का अर्थ है :
i) वही जो निर्यात प्रधान औद्योगिकीकरण का होता है। ( )
ii) वे वस्तुएँ जो पहले आयात की जाती थीं, अब सरकार द्वारा उनका आयात प्रतिबंधित कर दिये जाने पर देश में ही निर्मित की जाती हैं। इससे घरेलू औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन मिलता है। ( )
iii) औद्योगिक सामग्री को कृषि सामग्री का स्थानापन्न बनाना। ( )
iv) इनमें से कोई भी नहीं। ( )

2 दूसरी योजना के प्रारूप ने :
i) इस्पात, कोयला इत्यादि जैसे भारी उद्योगों के विकास को प्राथमिकता दी। ( )
ii) साबुन, प्रक्षालक (detergents) वस्त्र, जैसे उपभोक्ता सामग्री वाले उद्योगों को प्राथमिकता दी। ( )
iii) पर्यटन, विज्ञापन जैसे सेवा सामग्री वाले क्षेत्र में विकास को प्राथमिकता दी। ( )
iv) इनमें से कोई भी नहीं। ( )

3 भारत की उद्योग नीति के प्रमुख उद्देश्यों को लगभग दस पंक्तियों में समझाइये।

....
....
....
....
....
....
....
....

....

....

38.8 औद्योगिक संरचना, वृद्धि और नीति में परिवर्तन

इसमें कोई संदेह नहीं है कि राज्य के हस्तक्षेप और नियोजन ने भारत में औद्योगिक उत्पादन के ढांचे को बहुत अधिक प्रभावित किया है औद्योगिक क्षेत्र के कुल उत्पादन में अभियांत्रिकी वस्तुएँ, भारी मशीनी औज़ार और उपकरण, रसायन, विद्युत और इलेक्ट्रानिक उपकरण जैसे आधुनिक उद्योगों की हिस्सेदारी बढ़ी है। दूसरी ओर पटसन, चीनी, सूती वस्त्र जैसे पारंपरिक उद्योगों की हिस्सेदारी कम हुई है। वस्त्र उद्योग के मामले में भी, सूती वस्त्र और हथकरघा उद्योगों का भाग कम हुआ है जबकि सिंथेटिक वस्त्रों के उद्योग की हिस्सेदारी बढ़ी है। उत्पादों में हुए ये परिवर्तन भारतीय उद्योग के संरचनागत परिवर्तनों की ओर संकेत करते हैं। इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

38.8.1 वृद्धि दर में गिरावट

यहां जो बात चिंताजनक है, वह है औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि दर में आयी गिरावट। सार्वजनिक निवेश और लागत के विस्तार से मिले प्रोत्साहन ने, जिसका कि हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं, घरेलू उद्योगों के लिए घरेलू बाज़ार के फैलाव में काफी मदद की। इसके अलावा, विदेशी प्रतियोगिता के विरुद्ध भारतीय उद्योगों को प्रदान किए गए संरक्षण ने (सस्ती आयातित प्रौद्योगिकी और सामग्री के रूप में) भी घरेलू विनिर्माण को प्रोत्साहित करने में मदद दी। इसी कार्य को हमने "आयात-स्थानापन्न" औद्योगिकीकरण बताया है। इस प्रकार के औद्योगिक विकास का कुल प्रभाव, औद्योगिक उत्पादन के सूचकांक में हुई महत्वपूर्ण वृद्धि में देखा जा सकता है। इसके प्रति हम पहले ही ध्यान आकर्षित कर चुके हैं। लेकिन योजनाबद्ध औद्योगिकीकरण के पहले पन्द्रह वर्षों में स्थापित यह कीर्तिमान बाद के वर्षों में यथावत नहीं बनाये रखा जा सका। औद्योगिक उत्पादन की 1965-1976 की अवधि में वार्षिक संयुक्त वृद्धि दर 4.1 प्रतिशत तक नीचे आ गयी। हाल ही के वर्षों में (1980 से) यह दर बढ़ कर 5 प्रतिशत तक पहुंची है। परन्तु यह अभी भी द्वितीय और तृतीय पंचवर्षीय योजना अवधियों में प्राप्त की गयी दरों के स्तर से नीचे है।

3 वृद्धि में गिरावट दर्शाता हुआ एक कार्टून

38.8.2 गिरावट के कारण

गिरावट की इस प्रवृत्ति के कारणों को प्रकट करने के लिए कई स्पष्टीकरण सामने आये हैं। मोटे तौर पर उन्हें दो वर्गों में रखा जा सकता है।

i) वे, जो इस गिरावट का कारण सरकार द्वारा अपनाये गये नीतिगत हस्तक्षेप को मानते हैं, और,
ii) वे, जो बताते हैं कि इस गिरावट के लिए "संरचनागत" कारक ज़िम्मेदार हैं।

तालिका 2 : औद्योगिक उत्पादन के सूचकांक में वार्षिक संयुक्त दरें (प्रतिशत)

उद्योगों के प्रकार	1951-55 प्रथम योजना	1955-60 द्वितीय योजना	1960-65 तृतीय योजना	1965-76 वार्षिक योजनाएं और चतुर्थ योजना
1	2	3	4	5
आधारिक या मूल उद्योग	4.7	12.1	10.4	6.5
पूंजीगत माल उद्योग	9.8	13.1	19.6	2.6
मध्यवर्ती माल उद्योग	7.8	6.3	6.9	3.0
उपभोक्ता सामग्री उद्योग	4.8	4.4	4.9	3.4
अ) उपभोक्ता-टिकाऊ वस्तुएं	-	-	11.0	6.2
ब) उपभोक्ता अटिकाऊ वस्तुएं	-	-	-	2.8
सामान्य सूचकांक	5.7	7.2	9.0	4.1

स्रोत : एस. एल. शेट्टी, 'स्ट्रक्चरल रेट्रोग्रेशन इन दी इंडियन इकानामी सिंस दी मिड सिक्सटीज़, इकॉनामिक एण्ड पॉलीटिकल वीकली, 1978, बंबई।

38.8.3 नीतिगत बाधाएँ

पहले वर्ग द्वारा यह तर्क दिया गया कि स्वातंत्र्योत्तर काल में सरकार द्वारा लगाये गये लाइसेंस नियंत्रण, मूल्य और वितरण नियंत्रण आदि जैसे व्यापक रूप से लगाये गये नियंत्रणों ने निजी उद्यमों के विकास में बाधा पहुंचाई और इनमें किये गये निवेश को कम लाभप्रद बनाया। सुझाव यह दिया गया कि इस प्रकार के नियंत्रणों को हटाने से निवेश की दर में वृद्धि होगी और इससे उत्पादन की विकास दर में वृद्धि होगी।

भारत सरकार द्वारा हाल ही में किया गया इन नियंत्रणों का उदारीकरण, निवेश को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से उठाया गया कदम बताया गया है। इस दृष्टिकोण के आलोचक मानते हैं कि नियंत्रण हटाना नियंत्रणों के निकृष्ट क्रियान्वयन का विकल्प नहीं हो सकता और नियंत्रणविहीनता का परिणाम, आर्थिक शक्ति के और अधिक संकेन्द्रीकरण में निकलेगा और इससे सरकार संतुलित क्षेत्रीय विकास, रोज़गार वृद्धि, प्राथमिक और आवश्यक उद्योगों के वृद्धि को प्रोत्साहन, और विलास वस्तु उद्योगों की वृद्धि के हतोत्साहन उद्योग नीति के लक्ष्यों को पूरा नहीं कर सकेगी।

38.8.4 संरचनागत बाधाएँ

नीतिगत बाधाओं के तर्क को अस्वीकार करने वाले अर्थशास्त्रियों के पास कोई ऐसी परिकल्पना नहीं है जिसे वे सर्वसम्मति से स्वीकार कर सकें क्योंकि संरचनागत बाधाओं की परिकल्पना के अनेक अलग-अलग तर्क हैं :

i) सर्वाधिक रूप से स्वीकृत दृष्टिकोण यह है कि जब तक कृषि की वृद्धि उचित दर से

नहीं होती तब तक भारत की औद्योगिक वृद्धि को निरंतर बनाये नहीं रखा जा सकता। अतः तर्क यह दिया जाता है कि उद्योग की बाधाएँ कृषि के कारण पैदा होती हैं। अगर कृषि में वृद्धि की दर उच्चतर हो जाये तो औद्योगिक वृद्धि दर अपने आप बढ़ जायेगी। भारत की विशाल जनसंख्या को देखते हुए और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि भारत के पास पर्याप्त विदेशी मुद्रा भंडार था जिससे यह अनाज का आयात कर सकता था, छठे दशक और सातवें दशक की शुरुआत में खाद्य आपूर्ति एक बड़ी बाधा नहीं थी। फिर भी बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ कृषि की वृद्धि न होने की असमर्थता को औद्योगिक वृद्धि की बाधा माना जाता है। यह बाधा कई तरह से सक्रिय है—कृषि का धीमा विकास उद्योग के लिए उपलब्ध आवश्यक कच्चे माल की बचत (surplus) को कम कर देता है और विनिर्मित माल के लिए घरेलू बाज़ार को निरुद्ध कर देता है।

ii) इस तर्क का एक अन्य पक्ष यह सुझाता है कि जब कृषि उत्पादन मांग के साथ-साथ नहीं बढ़ता तब कृषि उत्पादों के मूल्यों में वृद्धि हो जाती है और चूंकि भोजन घरेलू व्यय का एक आवश्यक हिस्सा है, इसलिए लोग खाने की वस्तुओं पर अधिक व्यय करते हैं और अभोज्य वस्तुओं पर कम। इस तरह विनिर्मित वस्तुओं की मांग में बाधा आती है।

iii) संरचनागत बाध्यता का एक पक्ष परिसम्पत्तियों और आमदनियों के वितरण में बढ़ती हुई असमानता के रूप में भी सामने आता है। कुल जनसंख्या में ग़रीबों की हिस्सेदारी बढ़ रही है, इसलिए जनता की क्रय शक्ति घट रही है।

iv) एक पूरी तरह भिन्न परिकल्पना सामने रखी गयी है जिसमें औद्योगिक वृद्धि की गिरावट को सार्वजनिक निवेश और व्यय में आयी गिरावट से जोड़ा गया है। पहली तीन योजना अवधियों में औद्योगिक वृद्धि को सार्वजनिक निवेश और व्यय से प्रोत्साहन दिया गया था। लेकिन सातवें और आठवें दशकों में इस प्रवृत्ति में कमी आयी क्योंकि राज्य, निवेश के लिए संसाधन जुटाने में शहरी और ग्रामीण धनवानों पर कर लगाने को उत्सुक नहीं था। इसी लिए उसे सार्वजनिक निवेश में कटौती के लिए मजबूर होना पड़ा। सार्वजनिक निवेश के लिए धन जुटाने के प्रयास के रूप में राज्य घाटा वित्तप्रबंध (deficit financing) का सहारा ले सकता था, और लिया भी, लेकिन इससे मूल्यों में वृद्धि हुई। मुद्रास्फीति को रोकने के लिए सरकार को घाटा वित्तप्रबंध को सीमित करना पड़ा और इससे सरकार की निवेश की क्षमता भी सीमित हुई।

संरचनागत बाधा के सभी तर्कों में एक समान बात यह है कि ये सभी तर्क औद्योगिक वृद्धि की बाधा को मांग पक्ष की ओर से पैदा हुआ मानते हैं। यानी यह बाधा औद्योगिक उत्पादों की अपर्याप्त मांग के परिणामस्वरूप पैदा हुई है इसलिए जो समाधान सुझाये गये हैं वे मांग को बढ़ाने से संबंध रखते हैं और यह मांग कृषि क्षेत्र की आमदनी बढ़ा कर तथा सरकारी और सेवा क्षेत्र की आमदनी बढ़ा कर पैदा की जा सकती है।

बहुत कम अर्थशास्त्री ऐसे हैं जो आपूर्ति (Supply) की बाधाओं को सातवें दशक के मध्य के बाद औद्योगिक गिरावट का कारण मानते हैं। न तो वित्त की कमी थी न कच्चे माल का अभाव था। कुशल और अकुशल श्रमिकों का भी कभी अभाव नहीं रहा। आपूर्ति पक्ष में एकमात्र अभाव विदेशी मुद्रा से संबंधित था और क्योंकि भारतीय उद्योग, महत्वपूर्ण क्षेत्रों में तकनीक के आयात के बिना विस्तार नहीं कर सकता था और आवश्यक विदेशी मुद्रा भंडार का अभाव था, इसलिए औद्योगिक विकास में बाधा आयी। ऐसा मुख्य रूप से अपर्याप्त निर्यात के कारण हुआ। इसी लिए सरकार ने एक ओर तो निर्यात को प्रोत्साहन देने और दूसरी ओर आयात में कटौती की नीतियां लागू कीं।

कृषि क्षेत्र में किसी महत्वपूर्ण सकारात्मक परिवर्तन के अभाव में भारतीय उद्योग, वृद्धि की निम्न दर के घेरे में बना रहा।

38.9 उद्योग का स्वामित्व और नियंत्रण

अब तक हमने औद्योगिक नीति और औद्योगिक वृद्धि पर इस नीति के पड़ने वाले प्रभाव की चर्चा की है। हमने औद्योगिकीकरण को प्रोत्साहित करने में राज्य की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका को भी रेखांकित किया है। औद्योगिक नीति का एक और महत्वपूर्ण पक्ष, एकाधिकारों को रोकने और लघु उद्यमों के विकास को प्रोत्साहित करने के सरकार के दायित्व का है।

38.9.1 प्रारंभिक एकाधिकार

भारतीय व्यापार के इतिहास का यह एक महत्वपूर्ण पक्ष रहा है कि औद्योगिक गतिविधि के विकास के प्रारंभिक चरणों में ही चंद उत्पादक प्रभुत्वशाली व्यापार समूहों के रूप में उभर आये। टाटा, बिड़ला, श्रीराम आदि औद्योगिक घराने इस बात का उदाहरण हैं। घरेलू बाज़ार के छोटे होने के कारण उन्होंने विनिर्माण क्षेत्र में ऐसी महत्वपूर्ण स्थिति प्राप्त कर ली कि अन्य उत्पादकों के लिए अधिक सम्भावनाएं ही नहीं रहीं। परिणामतः जो उत्पादन के क्षेत्र के अग्रणी थे, वे ही लगभग एकाधिकारवादी हो गये। द्वितीय विश्व युद्ध के समय तक इस्पात उद्योग में टाटा परिवार ने जो हैसियत प्राप्त की वह इसी बात का उदाहरण है। एक और कारक, जिसने 'एकाधिकारों के अपरिपक्व विकास' नाम से जानी जाने वाली स्थिति लाने में योगदान किया, वह प्रबंध एजेंसी थी जिसे ब्रिटिश और भारतीय, दोनों ही व्यापारियों ने विकसित किया था। इस प्रबंध एजेंसी के कारण एक व्यापार समूह एक फ़र्म के प्रबंधन पर प्रभावशाली नियंत्रण रख सकता था। यह नियंत्रण उस स्थिति में भी कायम रहता था जब कि इस समूह विशेष के शेयर उस फ़र्म में बहुतायत में नहीं होते थे। इन सब कारणों से स्वतंत्रता के समय पारसी, मारवाड़ी, पंजाबी और कुछ कम सीमा तक चेट्टियार व्यापार घराने जो कि बंबई, बंगाल और मद्रास में सक्रिय थे, औद्योगिक क्षेत्र पर हावी हो गये। औद्योगिक परिदृश्य के दूसरे छोर पर कुटीर और ग्रामीण उद्योग, तथा लघु उद्योग थे जिनका सरकार में भी प्रभाव नहीं था और बाज़ार पर भी नियंत्रण नहीं था।

38.9.2 एकाधिकार पर नियंत्रण के प्रयास

इन्हीं कारणों से उद्योग (विकास और विनियमन) ऐक्ट 1951 का एक लक्ष्य इस परिदृश्य को बदलना और बड़े व्यापारिक घरानों पर नियंत्रण लगाना और उन्हें विनियमित करना था। एक वस्तु के उत्पादन के लिए, अगर उसे बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठान के अंदर तैयार किया जाना हो तो, औद्योगिक लाइसेंस प्राप्त करने की प्रक्रिया को एक नियंत्रणकारी कदम के रूप में देखा गया। लाइसेंस की पद्धति एक ऐसा तरीका है जिससे उद्योगों के स्थान, स्वामित्व, प्रौद्योगिकी और उत्पादन को विनियमित किया जा सकता था।

लेकिन व्यवहार में सरकार हमेशा ही ऐसा नहीं कर सकी। यह तथ्य 'औद्योगिक लाइसेंस नीति जांच समिति' की रिपोर्ट (1969) में साफ-साफ उभर कर आया। इस रिपोर्ट के अनुसार बिड़ला जैसे बड़े औद्योगिक घरानों ने लाइसेंस पद्धति का इस्तेमाल अपने हित में किया और अधिकांश लाइसेंस बटोर कर अनेक उद्योगों पर अपना एकाधिकार नियंत्रण बढ़ा लिया।

38.9.3 विदेशी पूंजी पर प्रतिबंध के प्रयास

स्वामित्व का एक और पक्ष जिस पर सरकार नियंत्रण लगाना चाहती थी, वह विदेशी पूंजी की भागीदारी का था। सरकार ने विदेशी व्यापार घरानों और बहुराष्ट्रीय निगमों (Multinational Corporations) को नियंत्रित करने के प्रयास किये :

1 भारतीय कंपनियों में विदेशी कंपनियों की इक्विटी की एक निश्चित सीमा निर्धारित करके, और
2 विदेशी कंपनियों की सहायक कंपनियों की गतिविधियों को विनियमित करके।

इन नियंत्रणकारी उपायों के बावजूद विदेशी व्यापार घराने भारतीय अर्थ व्यवस्था में अपनी

उपस्थिति बनाये रखने में सफल रहे और हाल ही के वर्षों में विदेशी प्रौद्योगिकी के आयात के माध्यम से वे इस उपस्थिति को बढ़ाने में भी सफल हुए हैं। प्रौद्योगिकी प्राप्त करने के लिए भारतीय कंपनियों को विदेशी सहयोग का सहारा लेना पड़ा, इसलिए उन्हें भारतीय व्यापार में विदेशी साझेदारी को मंजूर करने के लिए भी मजबूर होना पड़ा। कुछ विदेशी व्यापार समूह प्रौद्योगिक सहयोग-समझौतों के माध्यम से आए और इसके अलावा कई विदेशी समूह स्वतंत्रता के बाद भी भारत में ही बने रहे थे। परिणामस्वरूप इस तथ्य के बावजूद कि राज्य ने भारतीय व्यापार समूहों की वृद्धि को समर्थन और सहयोग दिया विदेशी पूंजी महत्वपूर्ण बनी रही।

सरकार ने उद्योग क्षेत्र में नियोजन और विनियमन की भूमिका में स्वामित्व का विनियमन भी शामिल किया था। सरकार की नीति का उद्देश्य एकाधिकारों की वृद्धि को रोकना और विदेशी पूंजी की भूमिका को प्रतिबंधित करना था लेकिन अनेक सरकारी समितियों के प्रतिवेदनों में यह बताया गया है कि यह उद्देश्य प्राप्त नहीं किया जा सका। ऐसा एकाधिकारी व्यापार घरानों और विदेशी व्यापार समूहों, दोनों के ही कारण हुआ। दोनों ही भारतीय उद्योग क्षेत्र में लगातार मज़बूत होते रहे। इसके बावजूद यह सच है कि सरकार ने ग़ैर-एकाधिकारी घरेलू उद्यमी समूहों के विकास में ठोस मदद की है।

38.9.4 लघु उद्योगों का विकास

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भारतीय उद्योग नीति का एक लक्ष्य लघु उद्योगों का विकास करना भी था। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए लघु उद्योगों के संरक्षण और नये उद्यम समूहों को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार ने कई नियम और कानून बनाये। हालांकि इस प्रकार के समूहों का विकास देश के कुछ विशेष क्षेत्रों तक सीमित रहा है फिर भी यह प्रवृत्ति किसी भी प्रकार से कम महत्वपूर्ण नहीं है।

पंजाब और हरियाणा, तटवर्ती आन्ध्र प्रदेश या पश्चिमी महाराष्ट्र जैसे राज्यों में हरित क्रान्ति ने बड़ी संख्या में लघु उद्योग प्रतिष्ठानों के उभरने में सहयोग किया है। इसी प्रकार बंबई, दिल्ली और मद्रास जैसे प्रमुख औद्योगिक केन्द्रों के आसपास नये उपाश्रित नगर उभर कर आ रहे हैं जिनमें भारतीय और अप्रवासी भारतीय उद्यमियों की तीव्र गतिविधियां नज़र आती हैं। इनमें से अधिकांश उद्यमी, सरकार (केन्द्र और राज्य दोनों ही सरकारें) से वित्तीय और आधारभूत संरचनागत मदद पाकर ही उभरे हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें भारतीय उद्योग नीति बहुत सफल रही है। नये लोग विनिर्माण गतिविधि में शामिल हो रहे हैं और ऐसा मुख्य रूप से राज्य की नियामक और सहयोगात्मक भूमिका के कारण ही संभव हुआ है। फिर भी, औद्योगिक वृद्धि के दृष्टिकोण से इस प्रवृत्ति को, और इसके महत्व को हमें बढ़ा-चढ़ा कर नहीं देखना चाहिए क्योंकि लघु उद्योग इकाइयां प्रायः 'बीमार' हो जाती हैं और बड़े प्रतिष्ठानों की प्रतियोगिता का सामना न कर पाने के कारण बंद हो जाती हैं। शायद इस प्रकार की इकाइयों द्वारा किया गया वास्तविक उत्पादन उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि इस प्रकार की स्थापित होती हुई इकाइयों की संख्या।

हाल ही के वर्षों में अप्रवासी भारतीय, बेशी या अधिशेष उत्पादन करने वाले किसान, ठेकेदार, तकनीकविद आदि के नये उद्यम समूह उभर कर आये हैं। वे उपभोक्ता सामग्री वाले उद्योगों में पैठ कर रहे हैं और विदेशी सहयोग प्राप्त करने की दिशा में सक्रिय हैं। यह प्रवृत्ति भारतीय उद्योग की वृद्धि में एक नये चरण की सूचक है, लेकिन वृद्धि पर इसके दीर्घावधि प्रभाव का अभी से मूल्यांकन करना अपरिपक्वतापूर्ण कदम होगा। जो बात स्पष्ट है, वह यह कि औद्योगिक नीति में हाल ही में जो परिवर्तन लाये गये हैं लगभग वे सभी भारतीय अर्थ व्यवस्था के उपभोक्ता सामग्री वाले क्षेत्र पर आधारित वृद्धि को बढ़ावा देने के उद्देश्य से प्रेरित हैं।

38.10 उद्योग और नियोजन : एक मूल्यांकन

इस संक्षिप्त सर्वेक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय उद्योग और व्यापारिक उद्यमों ने

पिछली शताब्दी से लेकर अब तक एक लम्बा सफर तय किया है। भारतीय उद्योग क्षेत्र पहले पटसन और चीनी जैसे कृषि-आधारित उत्पादों तक ही सीमित था लेकिन अब इसका विस्तार बहुत ही आधुनिकतम वस्तुओं तक हो गया है। इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि आज भारत एक प्रमुख औद्योगिक राष्ट्र है और उपनिवेश उपरान्त के तीसरी दुनिया के देशों में से भारत विशालतम औद्योगिक देश है। इसके बावजूद संतुलित क्षेत्रीय विकास, आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रीकरण में कमी और आत्म-निर्भरता (विदेशी पूंजी और प्रौद्योगिकी पर निर्भर न रहने के अर्थों में) जैसे उद्योग नीति संबंधी नियोजन के कुछ उद्देश्य अभी तक प्राप्त नहीं किये जा सके हैं।

इसके अलावा कृषक समाज का आमूल परिवर्तन करने में असफलता और परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई कृषि संबंधी आय और अधिशेष की धीमी गति ने उद्योगों पर मांग संबंधी बाधा पैदा कर दी है। छठे दशक में और सातवें दशक के प्रारंभ में सार्वजनिक क्षेत्र की स्थापना और उद्योग के लिए आधारभूत संरचना के निर्माण में किये गये सार्वजनिक निवेश और व्यय ने औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि की उच्च दर को बनाये रखने में मदद की परन्तु बाद में सार्वजनिक निवेश के कम होते जाने से औद्योगिक उत्पादन में मंदी आई है।

बोध प्रश्न 3

1 सही कथन पर (✓) निशान लगाइये।
स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के 15 वर्षों की तेज़ औद्योगिक वृद्धि के बाद :
i) भारतीय अर्थ व्यवस्था उपनिवेशकालीन अपनी स्थितियों में वापस लौट गयी ( )
ii) भारतीय अर्थ व्यवस्था ने अपेक्षाकृत अधिक तीव्र वृद्धि की ओर गुणात्मक छलांग लगायी, ( )
iii) भारतीय अर्थ व्यवस्था में गतिरोध पैदा हुआ और हल्की गिरावट आयी, ( )
iv) दोनों (i) और (ii) ( )

2 सही कथन पर (✓) निशान लगाइये।
विकास में भारत की धीमी गति के बारे में संरचनागत बाधाओं का तर्क है कि :
i) भारतीय अर्थ व्यवस्था बहुत अधिक नियंत्रित है और इसमें बाज़ार की शक्तियों को पूरी तरह सक्रिय होने का मौका नहीं मिलता, ( )
ii) भारतीय अर्थ व्यवस्था का विकास तब तक नहीं होगा जब तक इसमें माल की आमद या आपूर्ति नहीं बढ़ायी जायेगी, ( )
iii) भारतीय अर्थ व्यवस्था का विकास उस समय तक नहीं होगा जब तक कि भारत में औद्योगिक उत्पादों की मांग नहीं बढ़ जाती, ( )
iv) उपरोक्त में से कोई भी नहीं, ( )

3 भारतीय उद्योग नीति के संदर्भ में नियोजन के लक्ष्य किस सीमा तक पूरे हुए हैं? दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

38.11 सारांश

इस इकाई को पढ़ कर आपने जाना कि :

- औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत औद्योगिकीकरण, राष्ट्रीय वृद्धि पर केवल सीमान्त प्रभाव ही डाल सका।
- अर्थ व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में हुए असमान विकास के कारण तथा विकास के क्षेत्रीय असंतुलन के कारण देश के अधिकांश क्षेत्र पिछड़े रह गये। इससे भारतीय उद्योगपतियों और राष्ट्रवादियों ने नियोजित आर्थिक विकास के बारे में सोचना शुरू किया।
- विदेशी वस्तुओं की बाढ़ को रोकने के लिए और शिशु भारतीय उद्योग को संरक्षण देने के लिए योजनाकारों ने भारतीय विनिर्माण को संरक्षण देने, घरेलू उत्पादन को प्रोत्साहन देने ताकि यह उत्पादन विदेशी वस्तुओं का स्थान ले सके (आयात, स्थानापन्न) और भारतीय विनिर्मित वस्तुओं के लिए बाज़ार तैयार करने की रणनीति अपनायी।
- स्वातंत्र्योत्तर काल में भारतीय नियोजन ने उद्योगों के नियंत्रण और विनियमन पर ज़ोर दिया ताकि भारी और मूल उद्योगों को बढ़ावा मिल सके और जिससे निजी क्षेत्र के विनिर्माण को आधारभूत ढांचा प्रदान किया जा सके। योजना में स्वामित्व पर प्रतिबंध और नियंत्रण, और लघु उद्योगों को प्रोत्साहन जैसे तत्वों को भी शामिल किया गया।
- तीव्र वृद्धि के प्रारंभिक दौर के बाद भारतीय अर्थ व्यवस्था को वृद्धि की गति में मंदी का सामना करना पड़ा।
- मूल रूप से वृद्धि में आयी गिरावट के बारे में दो मुख्य दृष्टिकोण सामने आते हैं। एक दृष्टिकोण के अनुसार ऐसा सरकारी नियंत्रण के कारण बाज़ार की शक्तियों के स्वतंत्र क्रिया-कलाप में आयी बाधा के कारण हुआ है, जबकि दूसरा दृष्टिकोण औद्योगिक गिरावट का कारण, मांग पक्ष को लेकर अर्थ व्यवस्था की संरचनागत बाधा को मानता है। यह बाधा विनिर्मित माल के लिए पर्याप्त घरेलू बाज़ार उपलब्ध न होने की है।

38.12 शब्दावली

टैरिफ़ प्रोटेक्शन (शुल्क संरक्षण) : घरेलू उत्पादन करने वाले किसी भी उत्पादनकर्ता को किसी बाहरी (विदेशी) उत्पादनकर्ता के सामने प्रतियोगिता में खड़े रहने में सक्षम बनाने के लिए आयात शुल्क या लेवी लगाकर संरक्षण प्रदान करना। इससे देश में ही उत्पन्न माल की तुलना में आयात मंहगा हो जाता है। उदाहरण के लिए 1985 तक भारत इलेक्ट्रॉनिक सामान पर भारी शुल्क लगाता था और इस प्रकार भारतीय इलेक्ट्रॉनिक उद्योग को प्रोत्साहन देता था।

इन्फ्रास्ट्रकचरल फैसिलिटीज़ (आधारभूत संरचनागत सुविधाएं) : एक औद्योगिक संयंत्र निर्मित करने के लिए मूल सुविधाएं। इसमें आधारभूत मशीनरी, ऊर्जा संसाधन आदि शामिल हैं।

स्टेट स्पान्सर्ड (राज्याश्रित) : पूरी तरह राज्य से सहायता प्राप्त।

होम मार्केट (घरेलू बाज़ार) : देश में उत्पादित सामग्री के लिए देश के अन्दर ही उपलब्ध बाज़ार।

आउटपुट (उत्पादन) : औद्योगिक और कृषि उद्यमों में तैयार किया गया अंतिम उत्पादन।

मोनोपोली (एकाधिकार) : अनेक उद्योगों पर एक ही व्यक्ति या उद्योग समूह का अधिकार।

डीरेग्यूलेशन ऑफ़ इंडस्ट्री (उद्योगों की नियंत्रण मुक्ति) : उद्योगों पर सरकार का नियंत्रण या विनियमन लागू न रहना।

इनवेस्टमेंट (निवेश) : किसी भी उद्यम में इसकी उत्पादकता बढ़ाने के लिए मुद्रा, पूंजी या श्रम लगाने का काम निवेश कहलाता है।

सप्लाई (आपूर्ति) : बाज़ार में उपलब्ध सामग्री और सेवाएं।
मल्टी नेशनल कॉरपोरेशन्स (बहुराष्ट्रीय निगम) : वे निगम जिनके व्यापार हित अपने देश की सीमाओं से बाहर अन्य देशों तक फैले हुए हैं।
सैटेलाइट टाउन्स (उपाश्रित नगर) : पहले से ही स्थापित विशाल औद्योगिक नगरों के आस-पास विकसित होने वाले शहर। उदाहरण के लिए नयी दिल्ली के निकट फ़रीदाबाद। ये शहर मुख्य औद्योगिक शहरों को सेवाएं तथा अन्य औद्योगिक सुविधाएं उपलब्ध कराते हैं।

38.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) iii 2) i 3) देखिये उपभाग 38.2.1
आपके उत्तर में (i) औपनिवेशिक शासन द्वारा पैदा की गयी बाधाओं (ii) घरेलू बाज़ार की वृद्धि का अभाव शामिल होने चाहिए।

बोध प्रश्न 2

1) ii 2) i

बोध प्रश्न 3

1) iii 2) iii